[२]

जैन आगमों में सामायिक

सामायिक का महत्त्व :

जैन धर्म में 'सामायिक' प्रतिक्रमण का बहुत ही महत्त्वतूर्ण स्थान है । तीर्थंकर भगवान भी जब साधना-मार्ग में प्रवेश करते हैं तो सर्वप्रथम सामायिक चारित्र स्वीकार करते हैं । जैसे आकाश सम्पूर्ण चराचर वस्तुओं का आधार है, वैसे ही सामायिक चरण करणादि गुणों का आधार है, कहा भी है :—

'सामायिकं गुणना-माधारः खमिव सर्व भावानाम् ।
नहीं सामायिक हीना-श्चरणादिगुणान्विता येन ।।१।।'

बिना समत्व के संयम या तप के गुण टिक नहीं सकते । हिंसादि दोष सामायिक में सहज ही छोड़ दिये जाते हैं । अतः आत्मस्वरूप को पाने की इसे मुख्य सीढ़ी कह सकते हैं । भगवती सूत्र में स्पष्ट कहा है कि—

'आया खलु सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे ।'

अर्थात् आत्मा ही सामायिक है और आत्मा (आत्म-स्वरूप की प्राप्ति) ही सामायिक का प्रयोजन है ।

सामायिक शब्द का अर्थ :

सामायिक शब्द की रचना 'सम' और 'आय' इन दो पदों से हुई है ।

प्राकृत के 'सामाइय' पद के संस्कृत में अनेक रूप होते हैं । 'समाय' 'शमाय' और 'सामाय' तथा 'सम आय' से भी सामायिक रूप बनता है । फिर 'समये भवं' अथवा 'समये अयनं समायः' इस व्युत्पत्ति से भी सामायिक बनता है । सामायिक के निम्नलिखित अर्थ हो सकते हैं—

(१) 'सम' याने राग द्वेष रहित मनः स्थिति और 'आय' का अर्थ लाभ—अर्थात् सम भाव का जिससे लाभ हो, वह क्रिया ।

(२) 'शम' से समाय बनता है । 'शम' का अर्थ है—कषायों का उपशम; जिसमें क्रोधादि कषायों का उपशम हो, वह शामायिक ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(३) 'समे अयनं समायः' समभाव में पहुँचने या जाने को भी सामायिक कहते हैं।

(४) 'सामे अयनं सामस्य वा आयः–सामायः' अर्थात् मैत्री भाव में जाना, या मैत्री-भाव मिलाने का कार्य।

(५) सम–को सम्यग् अर्थ में मानकर भी समाय* बनाया जाता है। इसका अर्थ है—सम्यग् ज्ञानादि रत्नत्रय के आय का साधन।

(६) 'समये भवं' अथवा 'समये अयनं' इस व्युत्पत्ति से सामायिक रूप होता है। यहां समय का अर्थ काल की तरह सम्यग आचार या आत्म-स्वरूप है। मर्यादानुसार चलना अथवा आत्म-स्वभाव में जाना भी सामायिक है।

सामायिक का दूसरा नाम 'सावद्य योगविरति' है। रागद्वेष रहित दशा में साधक हिंसा, झूठ, चोर, कुशील और परिग्रह आदि सम्पूर्ण पापों का त्याग करता है, उसकी प्रतिज्ञा होती है, 'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'—सावद्य योग का त्याग।

सामायिक के विभिन्न प्रकार :

साधक की दृष्टि से सामायिक के दो एवं तीन प्रकार भी किये गये हैं। 'स्थानाँग सूत्र' में आगार सामायिक और अनगार सामायिक दो भेद हैं। आचार्यों ने तीन एवं चार प्रकार भी बतलाये हैं, जैसे कहा है—

'सामाइयं च तिविहं; सम्मत्त सुअं तहा चरित्तं च।
दुविहं चैव चरित्तं, आगार मणगारियं चेव' आ० ७६५ ॥

सम्यक्त्व सामायिक, श्रुत सामायिक और चारित्र सामायिक-ये सामायिक के तीन प्रकार हैं। आगार, अनगार भेद से चारित्र सामायिक के दो भेद होते हैं। सम्यक्त्व की स्थिति में साधक वस्तु-स्वरूप का ज्ञाता होने से राग, द्वेष में नहीं उलझता। भरत महाराज ने अपने अपवाद करने वालों को भी तेल का कटोरा देकर शिक्षित किया। पर उस पर राग-द्वेष की परिणति नहीं आने दी। यह सम्यक्त्व सामायिक है। निसर्ग और उपदेश से प्राप्त होने की अपेक्षा इसके दो भेद हैं। उपशम, सासादन, वेदक, क्षयोपशम और क्षायिक भेद से पाँच, निसर्ग आदि रुचि भेद से दस, क्षायिक.औपशमिक क्षाय-पशमिक भेद से तीन तथा कारक, रोचकर और दीपक भेद से भी सामायिक के तीन प्रकार

*समानां ज्ञानादीनामायो लाभः समाय सए व सामायिकम्—स्थानांगसूत्र।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं । जहां श्रद्धा पूर्वक सदनुष्ठान का आसेवन भी होता हो उसे कारक । जो श्रद्धा मात्र रखता हो, क्रिया नहीं करता वह रोचक और सम्यग् श्रद्धाहीन होकर भी जो दूसरों में तत्व श्रद्धा उत्पन्न करता हो—मरीचि की तरह धर्म-कथा आदि से अन्य को सम्यक् मार्ग की ओर प्रेरित करता हो, उसे दीपक सम्यक्त्व कहा है ।

सम्यक्त्व सामायिक में यथार्थ तत्वश्रद्धान होता है । श्रुत सामायिक में जड़ चेतन का परिज्ञान होता है । सूत्र, अर्थ और तदुभय रूप से श्रुत के तीन अथवा अक्षर-अनक्षरादि क्रम से अनेक भेद हैं ।

श्रुत से मन की विषमता गलती है, अतः श्रुताराधन को श्रुत सामायिक कहा है ।

चारित्र सामायिक के आगार और अनगार दो प्रकार किये हैं । गृहस्थ के लिए मुहूर्त आदि प्रमाण से किया गया सावद्य-त्याग आगार सामायिक है । अनगार सामायिक में सम्पूर्ण सावद्य त्याग रूप पांच चारित्र जीवन भर के लिये होते हैं । आगार सामायिक में दो कारण तीन योग से हिंसादि पापों का नियत काल के लिये त्याग होता है, जब कि मुनि जीवन में हिंसादि पापों का तीन करण, तीन योग ने आजीवन त्याग होता है ।

श्रावक अल्प काल के लिये पापों का त्याग करके भी श्रमण जीवन के लिये लालायित रहता है, वह निरन्तर यही भावना रखता है कि कब मैं आरम्भ-परिग्रह और विषय-कषाय का त्याग कर श्रमण-धर्म की पालना करूँ !

व्यावहारिक रूप :—जहाँ वीतराग दशा में शत्रु-मित्र पर समभाव रखना सामायिक का पारमार्थिक स्वरूप है, वहां सावद्य-योग का त्याग कर तप, नियम और संयम का साधन करना सामायिक का व्यवहार-पक्ष भी है । इसमें यम-नियम की साधना द्वारा साधक राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने का अभ्यास करता है । व्यवहार पक्ष परमार्थ की ओर बढ़ाने वाला होना चाहिये, इसलिये आचार्यों ने कहा है—

'जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे-नियमे तवे ।
तस्स, सामाइयं होइ, इहकेवलिभासियं ।। आ० ९६ ।।

अर्थात् जिसकी आत्मा मूलगुण रूप संयम, उत्तर—गुण रूप नियम और तपस्या में समाहित है, वैसे अप्रमादी साधक को सम्पूर्ण सामायिक प्राप्त

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है।" गृहस्थ-दान, शील, सेबा, पूजा और उपकार आदि करते हुये भी यदि सामायिक द्वारा आत्म-संयम प्राप्त नहीं करता है, तो वह सावद्य से नहीं बच पाता। अतः कहा गया है कि—

'सावज्ज–जोग–परिवज्जणट्ठा, सामाइअं केवलियं पसत्थं।
गिहत्थधम्मा परमंतिनच्चा, कुज्जा बुहो आयहियं परत्था ।।' ७९८

अर्थात् सावद्य योग से बचने के लिये सामायिक पूर्ण और प्रशस्त कार्य है इससे आत्मा पवित्र होती है। गृहस्थ धर्म से इसकी साधना ऊँची है—श्रेष्ठ है, ऐसा समझ कर बुद्धिमान, साधक को आत्महित और परार्थ—परलोक सुधार के लिये सामायिक का साधन करना आवश्यक है।

जो भी गृहस्थ तीन करण, तीन योग से सामायिक नहीं कर पाता, तब आत्महितार्थी गृहस्थ को दो करण, तीन योग से आगार सामायिक अवश्य करना चाहिये। क्योंकि वह भी विशिष्ट फल की साधक है। जैसा कि निर्युक्ति में कहा है—

'सामाइयम्मि उ कए, समणोइव सावओ हवइ जम्प्त।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ।।' ८०१ ।।

'सामायिक करने पर श्रावक श्रमण-साधु की तरह होता है, इसलिये गृहस्थ को समय-समय पर सामायिक का साधन करना चाहिये।'

सामायिक करने का दूसरा लाभ यह भी है कि गृहस्थ संसार के विविध प्रपंचों में विषय-कषाय और निद्रा विकथा आदि में निरन्तर पाप संचय करता रहता है। घड़ी भर उससे बचे और आत्म-शांति का अनुभव कर सके, क्योंकि सामायिक साधन से आत्मा मध्यस्थ होती है। कहा भी है—

'जीवो पमाय बटुलो, बहुसोउविय बहु विहेसु अत्थेसु।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ।।' ८०२ ।।

जो लोग यह सोचते हैं कि मन शांत हो और राग-द्वेष मिटे, तभी सामायिक करना चाहिये। उसको सूत्रकार के वचनों पर गहराई से विचार करना चाहिये। आचार्य बार-बार करने का संकेत ही इसलिये करते हैं कि मनुष्य प्रमाद में निज गुण को भूले नहीं।

साधु की तरह होने के कारण व्रती गृहस्थ व्यवहार में सामायिक करता हुआ मुकुट, कुण्डल और नाम मुद्रादि भी हटा देता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सावद्य और आर्त, रौद्र रूप दुर्ध्यान रहित साधक का जो मुहूर्त भर समभाव रहता है इसी को सामायिक व्रत कहा गया है। जैसे कि—

'सावद्य कर्म—मुक्तस्य, दुर्ध्यान रहितस्य च।
समभावो मुहूर्तं तद्—व्रतं सामायिकं स्मृतम् ।।' धर्म० ३७ ।।

सामायिक में कोई यह नहीं समझ लें कि इसमें कोरा अकर्मण्य होकर बैठना है। व्रत में सदोष-प्रवृत्ति का त्याग और पठन-पाठन-प्रतिलेखन, प्रमार्जन, स्वाध्याय-ध्यान आदि निर्दोष कर्म का आसेवन भी होता है। सदोष कार्य से बचने के लिये निर्दोष में प्रवृत्तिशील रहना आवश्यक भी है, इसीलिये कहा है—

'सामाइयं नाम सावज्ज जोगपरि वज्जणं,
निखज्ज जो पडिसेवणं च ।'

सामायिक का निरुक्त अर्थ :

सामायिक का निरुक्त अर्थ विभिन्न प्रकार से किया गया है, जैसा कि कहा है—

रागद्दोस विरहिओ, समोत्ति अयणं अओत्ति गमणं ति।
समगमणं ति समाओ, स एव सामाइयं नाम। ३४७७ ।।

अहवा समाइं सम्म-तं, नाण चरणाइं तेसु तेहि वा।
अयणं अओ समाओ, स एवं सामाइयं नाम । ३४७९ ।।

अहवा समस्सं आओ, गुणाण लाभोत्ति जो समाओ सो।
अहवा समस्त माओ, चेओ सामाइयं नाम। ३४८० ।।

प्रकारान्तर से अर्थ करते हैं—प्राणिमात्र पर मैत्री भाव रूप साम में अयन-गमन अर्थात् साम्य भाव से रहना अथवा नाम का आय-लाभ जहां हो, वह भी सामायिक है। सम्यगाय का भी प्राकृत में सम्माय बनता है। इस दृष्टि से—सम्यग् भाव से रहना भी सामायिक है और साम्य भाव का जिससे आय लाभ होता हो. तो उसे सामायिक समझना चाहिये। देखिये कहा है—

अहवा सामं मित्ती, तत्थ अओ तेण होइ समाओ।
अहवा सामस्साओ, लाभो सामाइयं नाम ।। ३४८१

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्ममओ वा समओ, सामाइयं मुभय विट्ठि भावाओ।
अहवा सम्मस्साओ, लाभो सामाइयं होइ ।। ३४८२।।

सामायिक : विभिन्न दृष्टियों में :

निश्चय दृष्टि—पूर्ण निश्चय दृष्टि से त्रस-स्थावर जीव मात्र पर सम भाव रखने वाले को ही सामायिक होता है, क्योंकि जब तक आत्म प्रदेशों से सर्वथा अकंपदशा प्राप्त नहीं होती—निश्चय में सम नहीं कहा जा सकता। कहा है—

जो समो सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होई, इइ केवलि भासियं ।। अनु० १२८

नय दृष्टि—जैन शास्त्र हर बात को नयदृष्टि से करा कर उसके अंतरंग और बहिरंग दोनों रूप का कथन करता है। अतः सामायिक का भी जरा हम नय दृष्टि से विचार करते हैं।

नैगमादि प्रथम के तीन नय सामायिक के तीनों प्रकार को मोक्षमार्ग रूप से मान्य करते हैं। उनका कहना है कि—जैसे सर्व संवर के बिना मोक्ष नहीं होता, वैसे ज्ञान, दर्शन के बिना सर्व संवर का लाभ भी तो नहीं होता, फिर उनको क्यों नहीं मोक्ष मार्ग कहना चाहिये। इस पर ऋजु सूत्र आदि नय बोले—ज्ञान, दर्शन सर्व संवर के कारण नहीं है, किन्तु सर्व संवर ही मोक्ष का आसन्नतर कारण है।

(१) सामायिक जीव है या उससे भिन्न, इस पर नय अपना विचार प्रस्तुन करते हैं। संग्रह कहता है—आत्मा ही सामायिक है। आत्मा सें पृथक कोई गुण सामायिक जैसा नहीं है।

(२) व्यवहार बोला—आत्मा को सामायिक कहना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर जो भी आत्मा हैं, वे सब सामायिक कहलायेंगे, इसलिए ऐसा कहना ठीक नहीं। ऐसा कहो कि जो आत्मा यतनावान है, वह सामायिक है, अन्य नहीं।

(३) व्यवहार की बात का खण्डन करते ऋजुसूत्र बोला—यतनावान सभी आत्मा सामायिक माने जायेंगे, तो तामलि जैसा मिथ्या दृष्टि भी अपने अनुष्ठान में यतनाशील होते हैं, उनके भी सामायिक मानना होगा, परन्तु ऐसा इष्ट नहीं, उपयोग पूर्वक यतना करने वाला आत्मा ही सामायिक है,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि जब हेयोपादेय का ज्ञान कर त्याग करेगा तो उसका व्रत स्वतः प्रमाणित हो जायगा।

(४) शब्द नय कहता है—उपयोग-पूर्वक यतनाशील तो अविरत सम्यग् दृष्टि और देश विरति भी हो सकता है, किन्तु उनके सामायिक नहीं होता, अतः ऐसा कहना चाहिए कि षट्काय के जीवों पर जो विधिपूर्वक विरति वाला हो, वह संयमी आत्मा सामायिक है।

(५) शब्द नय को बात पर समभिरूढ़ कहता है—यह ठीक नहीं, ऐसे संयमी तो द्रमत्त-साधु भी हो सकते हैं, किन्तु वहाँ सामायिक नहीं है, इसलिए ऐसा कहो—त्रिगुप्तिगुप्त यतमान संयमी आत्मा ही सामायिक है।

(६) एवभूत अपनी शुद्ध दृष्टि में इसे भी नहीं मानता, वह कहता है कि इस प्रकार अप्रमत्त-संयत आदि के भी सामायिक मानना होगा, जो ठीक नहीं, क्योंकि उनको कर्म का बंध होता है। अतः आत्म-प्रदेशों में स्थिरता नहीं है, इसलिए ऐसा कहो—सावद्ययोग से विरत, त्रिगुप्त, संयमी उपयोग-पूर्वक यतनावान आत्मा ही सामायिक है। इस नय की दृष्टि से शैलेशीदशा प्राप्त आत्मा ही सामायिक है। क्योंकि आत्मा के प्रदेश वहीं सम्पूर्ण स्थिर रहते हैं।

(१) नयगम नय कहता है—शिष्य को जब गुरु ने सामायिक की अनुमति प्रदान की, तब से ही वह सामायिक का कर्त्ता हो जाता है, क्योंकि कारण में कार्य का उपचार होता है।

(२) संग्रह और व्यवहार कहते हैं—अनुमति प्रदान करने मात्र से नहीं, पर जब शिष्य गुरुदेव के चरणों में सामायिक के लिए बैठ गया, तब उसे कर्त्ता कहना चाहिए।

(३) ऋजु कहता है—गुरु चरणों में बैठा हुआ भी जब सामायिक पाठ को पढ़ रहा है और उसके लिए क्रिया करता है, तब सामायिक का कर्त्ता कहना चाहिए।

(४) किन्तु शब्दादि नय कहते हैं—जब सामायिक में उपयोगवान् है तब शब्द क्रिया नहीं करते हुए भी, सामायिक का कर्त्ता होता है, क्योंकि मनोज्ञ-परिणाम ही सामायिक है।

इस प्रकार सामायिक और सामायिकवान् का विभिन्न दृष्टियों से स्वरूप समझ कर साधक को सावद्य योग से विरत होने का अभ्यास करना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। द्रव्य नय जो गुण पर्याय को आत्म-द्रव्य से भिन्न नहीं मानते, उनकी दृष्टि से संयमादि गुणवान् आत्मा ही सामायिक है और पर्याय नय की अपेक्षा समभाव लक्षण गुण को सामायिक कहा गया है, किन्तु जनमत निश्चय और व्यवहार उभयात्मक है। उसमें अकेले व्यवहार और अकेले निश्चय को कार्य साधक नहीं माना जाता, व्यवहार में जप-तप स्वांध्याय एवं ध्यान में संयत जीवन से रहना और सादे वेश-भूषा में शांत बैठकर साधना करना सामायिक है। राग द्वेष को घटाना या विकारों को जीत लेना सामायिक का निश्चय पक्ष है। साधक को ऐसा व्यवहार साधन करना चाहिए, जो निश्चय के निकट पहुँचावे। साधना करते हुए भी आत्मा में रागद्वेष की मंदता प्राप्त नहीं हो तो सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिए कि व्यवहार में कहाँ गलती है।

अभ्यास में बड़ी शक्ति है। प्रति दिन के अभ्यास से मनुष्य अलभ्य को भी सुलभ कर लेता है। यह ठीक है कि मानसिक शांति के बिना सामायिक अपूर्ण है। साधक उसका पूर्ण आनन्द नहीं पा सकता, परन्तु अपूर्ण एक दिन में ही तो पूर्ण नहीं हो जाता है। उसके लिए साधना करनी होती है। व्यापार में २–४ रु० मिलाने वाला अभ्यास की कुशलता से एक दिन हजार भी मिला लेता है।

साधक जब तक अपूर्ण है, त्रुटियां हो सकती हैं, पर खास कर विषय-कषाय में जिस वृत्ति का जोर हो, सदा उसी पर सद्भावना की चोट मारनी चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन के अभ्यास से सहज ही जीवन स्वच्छ एवं शान्त बन सकेगा।

यही जीवन को महान बनाने की कुंजी है। जैसे कहा भी है—

'सारे विकल्पों को हटा, निज आत्म को पहचानले।
संसार-वन में भ्रमण का, कारण इन्हीं को मानले।
जड़ भिन्न तेरी आत्मा, ऐसा हृदय में जान तू।
बस, लीन हो परमात्मा में, बन जा महान् महान् तू।।'

सामायिक सौदो नहीं, सामायिक सम भाव।
लेणो-देणो सब मिटै, छूटै वैर विभाव।। १।।
सामायिक में खरच नीं, वै समता री आय।
विषय-भोग सब छूट जा, छूटै करम कषाय।। २।।

—डॉ. नरेन्द्र भानावत

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org